Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

स्त्री विमर्श की अवधारणा और स्वरूप

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

स्त्री विमर्श की अवधारणा और स्वरूप

Dr. Hem Lata Sharma

Asst. Prof. J.C.M.M - Assandh Distt. Karnal, Haryana-India

---------------------------♦-----------------------------

भूमिका :

भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक है यहाँ पर स्त्री की स्थिति हमेशा दोयम दर्जे की रही है। आरंभ में स्त्री–पुरुष को समान दृष्टि से देखा गया था, लेकिन अपनी शारीरिक संरचना के कारण पुरुष ने धीरे–धीरे नारी पर अपना आधिपत्य जमा लिया। जहाँ पर आर्य काल ;वैदिक युगद्ध में स्त्री को आदर की दृष्टि से देखा गया तो मुसलमानों के आक्रमण के कारण वह घर की चार–दीवारी में कैद हो गई। यहीं से स्त्री के दुर्भाग्य की कथा–आरंभ होती है। रीतिकाल में वह भोग्य बन गई थी उसको केवल भोग–विलास की वस्तु माना जाता था, लेकिन आधुनिक काल में महापुरुषों के योगदान के कारण स्त्री की स्थिति में कापफी सुधार हुआ है। पुरुष वर्चस्ववादी होता है वह अपना प्रभुत्व स्त्री पर बनाए रखना चाहता है। इसलिए वह तरह–तरह के प्रपंच चकर स्त्री को खुली हवा में सांस नहीं लेने देना चाहता है। आज हर जगह स्त्री हिंसा का शिकार हो रही है। चाहे वह पढ़ी–लिखी हो अथवा अनपढ़। अनपढ़ जहाँ पर आर्थिक शोषण, यौन–शोषण आदि को सहन कर रही है। वहाँ पर पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ मानसिक यंत्राणा का शिकार हो रही हैं।

संविधान में बराबरी का दर्जा दिए जाने के बावजूद भी वह व्यावहारिक रूप से असमानता का शिकार है। इस प्रकार स्त्री ने जब भी अपना स्वतन्त्रा अस्तित्व निर्मित करना चाहा, समाज ने उसके साथ अमानवीय बर्ताव ही किया।

स्त्री विमर्श की अवधारणा, स्वरूप एवं इतिहास :

आज भले पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्रियों को घर की चार दीवारी से बाहर निकलने का अवसर मिल गया हो, परन्तु जहाँ अपने जीवन के निर्णय लेने की बात है, उनकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी पुरुष ही उनकी भाग्य विधाता बना हुआ है। स्त्री की पीड़ा, उसकी वेदना, उसका दर्द कहीं से भी कम नहीं हुए हैं। इस प्रकार स्त्रियों की स्थिति विचारणीय हो गई है और यह विमर्श का विषय हो गया है। अतः सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि 'स्त्री–विमर्श क्या है?' स्त्रियों से सम्बन्धित किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न–भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और प्रतिब(ताओं को उलट–पलट कर देखना, उसे समझने की कोशिश करना और पिफर मानवीय संदर्भों में उसे प्रतिष्ठित करना ही स्त्री विमर्श है।

स्त्री–विमर्श बहुआयामी हैं। स्त्री–विमर्श ने साहित्य, समाज तथा राजनीतिक की दुनियाँ में एक नई बहस को जन्म दिया है।

फ्पहली बार स्त्री–विमर्श में ही इस वास्तविकता का रहस्योद्घाटन हुआ कि हमारे मानव–मूल्य, मानव–मूल्य न होकर पितृसत्तात्मक मूल्य ही हैं।1 जो मूल्य पितृक हैं वे मानवीय कैसे हुए? जिनमें स्त्रियों के हितों की कोई सुरक्षा नहीं। जहाँ स्त्री का मूल्यों के नाम पर खुला–दमन, उत्पीड़न है। इसी स्थिति को उलटने का श्रेय नंस की महान लेखिका 'सीमोन द बोउवार' को जाता है, जिन्होंने पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना की और स्त्री–मुक्ति के लिए नए रास्ते खोले। फ्दमनकर्त्ता हमेशा दमित की जड़ों को काटता रहता है। ताकि वह बौना ही रह जाए।2

पितृ सत्तात्मक समाज ने हमेशा से स्त्री का शोषण किया है। उसे उसके अधिकारों से वंचित रखा है, ताकि वह पुरुष की बराबरी न कर सके। उसके मानसिक, शारीरिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में हमेशा बाधा ही पहुंचाई है। स्त्री को कभी पूरा विकास करने का अवसर ही नहीं दिया गया। स्त्री में क्षमता का अभाव नहीं है। वह किसी भी कार्य को आसानी से कर सकती है। परन्तु उसे स्त्री समझकर कार्य–क्षमत दिखाने का अवसर ही नहीं दिया। इसका कारण उसका स्त्री होना नहीं, बल्कि यह समाज है जो स्त्री की सारी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता रहता है।

फ्महादेवी वर्मा 1942 में प्रकाशित 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की दुर्दशा का बयान करती हैं और स्त्री–मुक्ति की बात करते हुए विकास के लिए उन्हें ज्ञान की परम्परा से जुड़ने की सलाह देती हैं।3

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की अस्मिता कुछ होती ही नहीं है। स्त्री जब इस व्यवस्था को तोड़ने की कोशिश करती है, तो समाज के कायदे–कानून आड़े आ जाते हैं, लेकिन पुरुष को क्रांतिकारी कहकर सम्मान दिया जाता है। इस लिंग भेद की नीति से नए–नए अंतर्विरोध सामने आ रहे हैं। स्त्री–मुक्ति तभी सम्भव है जब उसके भीतर ज्ञान–चेतना जागृत हो, तभी वह अपनी अस्मिता का अहसास समाज को करा सकती है।

स्त्री–विमर्श का स्वरूप :

प्राचीन भारतीय परम्परा में स्त्री को पुरुष की संगिनी माना गया है। वह हर कार्य में पुरुष के समान मानी जाती थी, वह किसी भी स्थिति में पुरुष से हीन नहीं थी। वह पुरुष के जीवन की मूलभूत आवश्यकता थी। क्योंकि स्त्री के बिना पुरुष का कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। किन्तु नारी की यह श्रेष्ठता सदैव बनी नहीं रही। समय के साथ–साथ उसकी स्थिति ह्रासोन्मुख होती रही। पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुषों के पास स्त्रियों की देह को उपभोग करने का पूरा अधिकार होता है। कोई भी स्त्री समाज में कितनी भी प्रतिभा सम्पन्न हो, लेकिन इसके साथ ही

यदि वह पितृक नैतिकता का बहिष्कार करती है तो उसको सामाजिक अपमान झेलने पड़ते हैं।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक जितनी भी लड़ाइयाँ लड़ी गई, उनकी दारुण यंत्राणा को स्त्री ने ही भोगा है। अर्थात् असली बंटवारा स्त्री–देह का ही हुआ है। राजाओं ने अपनी वीरता केवल स्त्री–देह पर ही दिखाई है। यदि स्त्री वैसे प्राप्त न हुई तो किसी भी प्रकार का बल–छल करने से वे नहीं चूके।

विश्वामित्रा जैसे तपोबल सम्पन्न हृषि ने भी स्त्री–देह के लिए अपनी तपस्या भंग कर दी। मनुष्य का शोषण के विरु(विद्रोह करना स्वाभाविक है। स्त्री भी आखिर मनुष्य ही है अतः उसने भी धीरे–धीरे अपने अधिकारों को पहचाना तथा पितृ सत्ता का विद्रोह किया।

फ्स्त्री की हीनता को व्याख्यायित करते हुए ऐंजिल्स ने यह कहा है कि आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्रा एवं सम्पन्न होने के कारण पुरुष ने मातृ सत्तात्मक परिवार को पितृसत्तात्मक परिवार में बदला।4

स्त्री को जब तक आर्थिक क्षेत्रा में पुरुष के समान अवसर नहीं मिलते, तब तक वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्राता नहीं हो सकती।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण ही पुरुष ने स्त्री पर अपना आधिपत्य जमा लिया और वह दास्ता की बेड़ियों में जकड़ती चली गई। 19वीं सदी में स्त्रियों ने पितृसत्तात्मक सत्ता का विरोध किया तथा नारी–मुक्ति के स्वर खुलकर सुनाई देने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे सकारात्मक पक्ष यह रहा कि अब अन्य सुधारों की चर्चा के साथ सुधारकों का ध्यान स्त्री–सुधार की ओर भी गया। सुधारकों का ध्यान उन अशिक्षितों, गंवारिनों की तरपफ भी आया जो माता हैं, जननी है। बालक का सुधार घर से ही हो सकता है और इसलिए उसे जीवन का प्रथम पाठ पढ़ाने वाली माता का सुधार आवश्यक जान पड़ा। अतः समाज के जागरूकों द्वारा स्त्री शिक्षा की बात उठाई गई।

स्त्री–विमर्श का इतिहास :

स्त्री–विमर्श का सूत्रापात पश्चिम से माना जाता है। आधुनिक नारीवाद के सि(ान्त का पहला मील का पत्थर पहली बार 1946 में नंसीसी में 1953 में अंग्रेजी में प्रकाशित 'सीमोन द बोउवार' की कृति 'द सेंकड सेक्स' थी।

'द सेकेंड सेक्स' ने दर्शन–शास्त्रा, इतिहास, मनोविज्ञान और मानव–शास्त्रा का सहारा लेते हुए यह स्थापित किया कि स्त्रियों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है और इसे एक प्राकृतिक प्रकृिया नहीं समझा जा सकता।

सीमोन द बोऊवार का कथन है–फ्औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।5 पाश्चात्य जीवन प(ति में जिस व्यक्ति स्वातन्त्रय का शिलान्यास हुआ तो अमेरिका में स्वतन्त्राता संग्राम, नंस की राज्य क्रांति, नीदरलैंड, इटली, जर्मनी की समाज क्रांतियों ने विश्वव्यापी चेतना को जगाया तो भारत में भी पुरुषों के साथ नारी विचारकों ने नारी–सम्बन्धी न केवल नए सि(ान्त प्रतिपादित किए, बल्कि नारी के यथार्थ को भी प्रस्तुत किया। फ्1930 में पहली बार स्त्रियों ने भारतीय स्वतन्त्राता–संग्राम में प्रत्यक्षतः भाग लिया, हालांकि गाँधी जी इसके विरु(थे वे चाहते थे कि उनके नमक–आन्दोलन में स्त्रिाया, नेपथ्य में रहें और पिकेटिंग, चरखा कातने जैसे नारी सुलभ कार्य संभाल कर पुरुषों को सहयोग दें। किन्तु मारग्रेट कजिन्स, कमला देवी चट्टोपाध्याय, सरोजनी नायडू आदि प्रबु(महिलाओं ने इस बात पर विरोध उनका विरोध किया और अन्त में सपफलतापूर्वक सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग भी लिया।य6 गाँधी जी तथा अन्य नेताओं के जेल चले जाने पर सरोजिनी नायडू ने ही आन्दोलन का कुशल नेतृत्व किया। इस आंदोलन में सरोजिनी नायडू सहित 800 महिलाएँ बंदी बनाई गई थी। महिलाओं के इस योगदान से प्रभावित होकर ही इसके ठीक एक वर्ष बाद 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में स्वतन्त्रा भारत के संविधान पर विचार करते हुए स्त्री–पुरुष समानता के सि(ान्त को सम्मिलित करने की बात उठाई गई थी। इससे स्त्रियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आना स्वाभाविक था।7

फ्प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने स्त्री को पुरुष से भिन्न कोई लिंग मानने की अपेक्षा यह मानने पर बल दिया है–फ्औरत–मर्द के पफर्क में न पड़कर मैंने अपने आप आपको हमेशा इंसान सोचा है। शुरु से जानती थी–मैं हर चीज के काबिल हूँ। कोई समस्यया हो, मर्दों से ज्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हूँ–इसलिए मैंने अपने औरत होने को कभी कमी के पहलू से नहीं सोचा।य8 1829–1956 की सवा सौ साल की लम्बी अवधि में नारी ने अपनी स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए अथक् संघर्ष किया है। हिन्दू कोड बिल का पास हो जाना वास्तव में भारतीय नारी की अपराजेय संघर्ष–शक्ति का सूचक है। जिसका मूल कारण है नारी की कर्मठता, नारी की प्रबलता। यही उसकी सपफलता की पहली सीढ़ी भी है।

स्त्री–विमर्श के इतिहास में महिला संगठनों का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रीय महिला आयोग तथा राज्य महिला आयोगों का गठन महिलाओं के संगठित प्रयासों की सुखद परिणति माने जा सकते हैं।

अतः इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि महिलाएँ जितनी गति से अधिकार सम्पन्न और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनेंगी उसी गति से समाज में उनका दर्जा बढ़ेगा तथा उनके प्रति अन्याय एवं शोषण में कमी आएगी।

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री–विमर्श :

साहित्य व समाज निर्माण प्रक्रिया दोनों साथ–साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। समाज से ही साहित्य का निर्माण होता है। साहित्य में चल रहे स्त्री–विमर्श, महिला–सशक्तिकरण एवं नारी अस्मिता का प्रश्न पफैशन नहीं है, वरन् परम्परा और अमानुषिक बोध का सतत् चलने वाला द्वन्द्व है। जब स्त्री अपने व्यक्तित्व हेतु संघर्षरत होती है तो उसमें चेतनमन की संकल्पात्मक भूमिका और अवचेतन मन की इच्छा शक्ति होती है। सदियों से अवस्थित एक परम्परा व सुदृढ़ व्यवस्था को तोड़ना और जन संघर्ष से जुड़ कर पग–पग पर यथार्थ के थपेड़े खाना ही अस्मिता की पहचान है। विश्व की लगभग सभी सभ्यताओं व संस्कृतियों में स्त्री की भूमिका दोयम दर्जे की रही है। उसके सभी मानदण्ड पुरुषों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। स्त्री–विमर्श को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर सबसे पहले नंस की महान लेखिका 'सीमोन द बोउवार' का नाम आता है। सीमोन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में लिखा है–फ्स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।9

स्त्री जन्म से अत्यन्त बु(िमान और शक्तिवान होती है पर पुरुष उसे शनैः–शनैः अपने अधीन करता रहता है, उसे अपने मातहत बनाता–बनाता उसकी समूची शक्तियाँ क्षीण कर देता है। स्त्री

www.ignited.in

को पुरुष सदैव एक ही शिक्षा देता है कि वह उससे हीन है, दीन है। इस तरह वह उसे अपनी दासी बना लेता है। उसे परिपक्व होने तक अनवरत रूप से उसके मस्तिष्क में भरा जाता है कि तुम्हें अपने परिवार, पति, स्वामी और बुजुर्गों की आज्ञा मानकर ;महानद्ध बनना है। साहित्य की दुनिया में कहानी, कविता आदि के क्षेत्रा में अनेक ऐसी रचनाएँ लिखी गयी, जिनमें स्त्रियों के अधिकारों के सवाल को गंभीरता से उठाया गया है तथा उन्हें पुरुषों के बराबर हक देने की माँग की गयी है।

खासकर रघुवीर सहाय, रांगेय राघव, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, मृणाल पाण्डेय, चित्ता मुद्गल, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री, अनामिका, मैत्रोयी पुष्पा, कात्यायनी आदि कई ऐसी रचनाकार हैं, जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक सत्ता में स्त्रियों की भागीदारी के सवाल को गंभीरता के साथ उठाया है।

प'नारी' कविता में रघुबीर सहाय यहाँ तक कहते हैं किसमाज में नारी की दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण पुरुषवाद है जो उन्हें सदियों से अपने अधीन रखता आया है। फ्नारी बिचारी है। पुरुष की मारी है। तन से क्षुधित है। मन से मुदित है। लपककर झपक्कर। अंत में चित्रा है।य10 हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' की पात्राा सुमन पहली स्त्री है, जिसमें विद्रोह का स्वर मुखरित होता है।

इसके बाद जैनेन्द्र, जयशंकर, इलाचंद जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क और अज्ञेय द्वारा स्त्री–अस्मिता को अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जिससे साहित्य में स्त्री–विमर्श मानवीय चिंतन के रूप में नये आयाम और ऊँचाइयां लेने लगा।

'अमृता प्रीतम' के उपन्यास 'पिंजर' में 'पूरो' का दर्द हो या 'आग की लकीरें' की 'नंदा' की पीड़ा। हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य हो या भारत–पाक विभाजन, असल बंटवारा स्त्री–देह पर ही हुआ है। मजहब के जुनून में पागल इन्सानों ने सबसे अधिक पीड़ा स्त्री को ही दी है। हिन्दी साहित्य में सर्वत्रा इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। तसलीमा को जान से मार देने की धमकियाँ यही जाहिर करती हैं कि पितृक सत्ता के विरु(बोलना कितना खतरनाक है। दुनिया में जितनी भी स्त्री लेखिकाओं ने उत्पीड़ित नारी के इतिहास की करुणाजनक स्थिति को उभारने की कोशिश की है, उन्हें चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

नारी जागरण की दृष्टि से तो साहित्य उसके स्वत्व और व्यथा का समर्थ व्याख्याकार ही रहा है। कवियों के कंठ से भारत की जय ही नहीं गूंजी, नारी की जय भी ध्वनित हुई है। महिलाओं ने इस रचना पर्व में कितना सहयोग दिया है, यह हेमन्त कुमारी चौधरानी, सरोजिनी नायडू, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाओं से प्रकट है।

नारी–मुक्ति का सन्दर्भ :

साहित्य के समाज की स्त्री लेखिकाओं से यही अपेक्षाएँ की जाती हैं कि वे पितृक मर्यादाओं का ही अनुकरण करें। लेकिन जब से स्त्री–विमर्श आया है–स्त्री की अपने अधिकारों के प्रति चेतना विकसित हुई है। स्त्री–मुक्ति के सवालों पर जो विमर्श हो रहा है, वह स्त्री जागृति द्वारा ही संभव हुआ है। इसके प्रमाण में 1960 के बाद अमेरिका में तेजी से उठने वाले नारी–मुक्ति आन्दोलनों को लिया जा सकता है।

फ्नारी–आन्दोलन अगुवा ग्रिमके बहनें अपने निश्चय पर अडिग रहीं। सराह ग्रिमके स्थिति की तह में जाकर इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विवाह एवं मातृत्व को अपने जीवन की चरम उपलब्धि मानने से ही नारी का पतन हुआ है।11

भारतीय नारी–मुक्ति के सन्दर्भ में मीराबाई का उदाहरण भी जीवन्त है। मीरा के एक–एक पद में स्त्री–मुक्ति की कामना चीख–चीखकर कहती है–फ्राणा जी तुम्हारी इस व्यवस्था ;यानि पुरुष व्यवस्थाद्ध की मुझे जरूरत नहीं . . . मुझे कुछ और चाहिए, मुझे इन सीमाओं से परे जाना है, इन सीमाओं को तोड़ना है। हर विभाजन की रेखा को धूमिल करना है।12

मुक्ति की इतनी गहरी आकांक्षा मीरा के हृदय में विद्यमान थी, क्योंकि वह पुरुष प्रधान समाज के खोखलेपन से परिचित थी। वह जानती थी कि यह सामाजिक व्यवस्था केवल मनुष्य का दलन करती है, उसे मुक्ति नहीं देती। इसीलिए मीरा ने सभी सामाजिक बन्धनों को तोड़ डाला। जिसे स्त्री मुक्ति का प्रथम अध्याय माना जा सकता है। पुरुष साहित्य तथा समाज में सब कुछ करने के लिए स्वतन्त्रा है तथा स्त्री की सीमा–रेखाओं को भी वही तय करता है। फ्इसी तरपफ इशारा करते हुए महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' में लिखा है कि बड़े से बड़ा दुराचारी व्यक्ति भी परम सती स्त्री का न केवल आलोचक ही बलिक न्यायकर्त्ता भी होता है।13

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष तथा स्त्री के लिए दोहरे मानदण्ड हैं, जिनके कारण पुरुष बड़े–से–बड़े अपराध करे तो उसे क्रान्तिकारी कह दिया जाता है। लेकिन उसी अपराध में स्त्री का जीना हराम कर दिया जाता है। धर्म से लेकर राजनीति तक सभी में स्त्री को ही शिकार बनाया जाता है।

सामाजिक परिपेक्ष्य में स्त्री–विमर्श :

मनुष्य समाज जिन दो पहियों के बल पर अपनी जीवन यात्राा करता है वे पहिए हैं–पुरुष और महिला नर और नारी। दोनों न केवल एक–दूसरे के पूरक हैं, बल्कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही सम्भव नहीं। इनमें एक श्रम है, दूसरी उस श्रम की प्रेरणा–शक्ति। एक बाहरी परिवेश का नियंता है तो दूसरी आंतरिक और घरेलू मोर्चे की अधिष्ठात्री। लेकिन दोनों के आपसी सम्बन्धों के बीच समानता के संतुलन का अभाव सापफ–सापफ दिखाई देता है। पुरुष सदैव महिला को अपने अधीन रखता है। सभी महिलाओं को एक समूह केरूप में देखें तो संसार के लगभग सभी देशों में वे समाज का कमजोर हिस्सा रही हैं। यद्यपि वैदिक काल में भारत में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया जाता रहा है। पुत्रा और पुत्री दोनों का 'उपनयन संस्कार' अनिवार्य था, परन्तु मध्यकाल आते–आते महिलाओं पर सामाजिक मर्यादाओं के अंकुश लगाए जाने लगे और उनकी स्थिति पुरुषों के हाथ के खिलौने से अधिक नहीं रह गयी। इस चौपाई में मध्यकाल में नारी जीवन की परवशता का यही दर्द उभरा है–

फ्कत विधि सृजी नारि जग माँहीं

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

विशिष्ट मत : बीसवीं सदी के महान चिंतक, आर्थिक व्यवस्थाओं के नियामक और साम्यवाद के सूत्राधार कार्ल मार्क्स ने स्त्री

www.ignited.in

शक्ति को पहचाना था। उसने अपने ग्रन्थ में लिखा है– फकिसी समाज के स्तर का मापन करने के लिए उस समाज में स्त्रियों की स्थिति को देखना चाहिए।

भारत के प्रधानमंत्री और ऐतिहासिक, चिंतन के मर्मज्ञ पं॰ जवाहरलाल नेहरू का भी स्पष्ट कथन है कि–

फमहिलाओं की स्थिति ही देश के स्वरूप को सूचित करती है।14

महिलाओं के प्रति पुरुषों का दुराग्रह पूरे समाज के आचरण में झलकता है।

'सीमोन द बोडवार' ने 'द सेंकड सेक्स' में लिखा है फपुरुष बड़ी चालाकी से पत्नी से पवित्रा बने रहने की शपथ ग्रहण करवा लेता है, पर वह स्वयं इस सामाजिक व्यवस्था से संतुष्ट दिखाई नहीं पड़ता।15

विवाह–व्यवस्था के कारण पुरुष–स्त्राी को नैतिक आचरण के लिए बाध्य करता है परन्तु खुद उन मानदंडों को नहीं मानता। वह स्त्रियों पर तो अपना नियंत्राण रखना चाहता है और खुद व्याभिचार का आचरण करता है। पुरुष का यह आचरण सामाजिक यथार्थ को दर्शाता है। कुछ चिंतनशील लोगों के प्रयासों से महिला अधिकारों के बारे में जागरूकता का स्तर बढ़ा है। न्याय व अधिकार पाने की संघर्ष शक्ति बढ़ी है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महिलाओं की आवाज बढ़ रही है। उनकी आवाज को मजबूती प्रदान करने में महिला संगठनों, शिक्षा संस्थानों, स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवियों तथा मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए आज पीड़ित स्त्री अपने को छिपाने की कोशिश नहीं करती। न वह समाज और लांछनों से डरती है। यदि वह सामर्थ्यवान है तो अपने से कम समर्थ स्त्राी की मदद कर इस मिथ को तोड़ना चाहती है कि औरत ही औरत की दुश्मन होती है।

आधार–सूची :

1. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, पृ. 10

2. अनुवादक, प्रभा खेतान, स्त्राी उपेक्षिता, पृ. 70

3. सं॰ सत्यव्रत, समकालीन साहित्य समाचार, अक्तूबर–2006

4. रोहिणी अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ. 18

5. सम्पादक साध्ना आर्य, निवेदिता मेनन, जिन लोकनीता–नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे, पृ. 1

6. रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ. 39,40

7. वही, पृ. 40

8. वही, पृ. 67

9. अनुवादक : प्रभा खेतान, स्त्राी उपेक्षिता, पृ. 2

10. सं॰ रोमी शर्मा, भारतीय महिलाएँ : नई दिशाएं, पृ. 120

11. रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ. 28

2. मृदु सन्दु, महिला उपन्यासकार, 21वीं सदी की पूर्व संध्या के संदर्भ में

13. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, पृ. 140

14. राजबाला सिंह, मानवाध्किार और महिलाएँ, पृ. 64, 65

15. सं॰ सत्यव्रत, समकालीन साहित्य समाचार, अंक 10, मासिक, अक्तूबर–2006, पृ. 7